ऋतुपर्व/शंकर माहेश्वरी

स्वर समवेत
कलकत्ता
७००००७

ऋतुपर्व/शंकर माहेश्वरी
आवरण/विभूति भूषण सेनगुप्ता
स्वर समवेत, ६, तनसुक लेन कलकत्ता-७०००००७
द्वारा प्रकाशित/भागचन्द सुराना, सुराना प्रिंटिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-७०००००७ द्वारा मुद्रित
प्रथम संस्करण : दिसम्बर १९८७
मूल्य बीस रुपये
RITUPARVA BY SHANKAR MAHESHWARI

बेटी कृष्णा को
जिसे नौ वर्ष पूर्व
उसके विवाहोपलक्ष्य में
यह उपहार दिया जाना था
पर अपरिहार्य कारण से
तब यह संभव नहीं हो सका।
और आज जिस पर
नाती आलोक
एवम्
नातिन चन्दना ने भी
अपना अधिकार
स्थापित कर लिया है।

—शंकर माहेश्वरी

आवाहन :

आलोक फूँक दो तुम

वसन्त :

पलक तो बँध गई
ये हठीले मंजरी के क्षण
बंसी को देखो तो
आँगन भर किलकारी लाये
आँगन की किलकारी
यह खिलता कुसुम हमारा
डोल रही डाली पर
घायल होने की मौसम में
कहाँ तपी तू कोयल
घूम-घूम कर पवन कह रहा
आई खेल होली
धिन-धिन ता धिन
झुरमुट मत आँक अरी

ग्रीष्म :

मैं खड़ा तट पर
अगरु का निर्मोक धारे
मुट्ठी भर-भर उड़ा रही है धूल
मुक्त व्योम वाले पंछी
आशा के पाँवड़े बिछाये
धूप का तपना
ले लो मेरा प्यार

वर्षा :

विभुता भरे जगत में
खिड़की से लगी हुई आँख
बिजली की लुका छिपी
बन्धु रुद्र नाचो
इस बादल का जीवन
आओ री बूँदों की परियो
झुके झुके आये

आँख में काजल
आज किसको सौंप दूँ

शरद :

प्रेम के ये बयन
इस कलूटे सजल घन को
कुंकुम की थाली ले
कल तेरी बारी
आज न छोड़ूँगी
प्रेम की खेती करने को
चिलकती है झील

हेमन्त :

सोना उगले धरती
दे रहीं फेरी
री वे क्या आये

शिशिर :

चलो भई मृगतृष्णा के देश
ऊसर में क्या बीज बो दिया
प्राण के घायल क्षतों पर
दूसरे देश सुना गुंजन
पतझर की डाली पर
थकी हारी शाम
मूर्ति तुम्हें लौटा न सका

ऋतुसन्धि :

क्या करूँ संकल्प मेरे
कितने पागल क्षण
खोलो अब द्वार
रात के पिछले पहर को
यहाँ वहाँ यह कैसी सुगबुग
झर रहे पत्ते पुराने
मातृभूमि के अमर दीप में
नमन तुम्हें जागरण देवि
अरुण कलश में

ऋतुपर्व

[illegible]

[illegible]

आवाहन

आलोक फूँक दो तुम
वन की मुरली नीड़ों के रन्ध्रों से
बज जायेगी, मिट जायेगा गुमसुम।

गोरस की गगरी
सँभलेगी कैसे
अंचल का पट
होगा जैसे तैसे
हठवाली तृष्णा तुम—
दे दो गर्वीले आवाहन स्वर को
अनिमादिक व्रजियाँ
खेलेंगी कुंकुम।
आलोक फूँक दो तुम।

*

वसन्त

पलक तो बँध गई
बँध कर रही
हम तो देखते ही रहे।

व्योम के नीले शिखर पर
किरण के झूले पड़े
झूलने को पंछियों के गीत
आ - आ कर अड़े

क्षितिज छू कर घिरीं—
पैंगें फिरीं
हम तो देखते ही रहे।

ओस की बूँदें पड़ी तो
चौंक कर आँखें खुलीं
सँवरने के ब्याज
अंग मरोड़ती
खुलती कली

गन्ध तो चुभ गई
चुभ कर बही
हम तो देखते ही रहे।

ये हठीले मंजरी के क्षण
घोलते हैं कान में
कुछ और तीखे स्वन।

अँजुरियाँ भर
पवन गन्ध उछालता बेशर्म
फूल बन कर खोलते हैं आँख
सारे मर्म
ये पँखेरू की उड़ानें खुरच देतीं मन।

रंग पर भर रंग गहरे
और गहरे रूप
पुतलियों में आँजते हैं स्वप्न ये अपरूप
वेदना के हाथ देते तूलियों के प्रण।

•

वंसी को देखो तो छिद्रों की जाली है
हमने कुछ ऐसी ही
विपदाएँ पाली हैं।

चक्कर सा भरमीला
फिरता पवमान यहाँ
पगलामी ऐसी है
छू देता जहाँ-तहाँ
स्वर बन कर बज उठता
जो कुछ भी खाली है।
हमने कुछ ऐसी ही
विपदाएँ पाली हैं।

स्वर में छिप बैठा जो
वड़वानल का गायन
फैलाई बाँहों सा
करता है आवाहन
अस्फुट मनुहारों में
चाहों की लाली है।
हमने कुछ ऐसी ही
विपदाएँ पाली हैं।

आँगन भर किलकारी लाये
तुम आये।

तान दिया मैंने आकाश
एक सूर्य—
इतने सब रंग उधर आये
तुम आये।

दिशा-दिशा अँकुरी है दूब
एक पुष्प—
गन्धों के पवन उमग आये
तुम आये।

थाली से फूटा है नाद
एक छन्द—
रागों के सागर लहराये
तुम आये।

*

आँगन की किलकारी खींच गई रेखा
अन्तस् का मन भाया चित्र लिखा देखा।

आँखों में जीवन का क्रीड़ित विश्वास
मुखड़े पर अनसँवरा इतना उल्लास
अभी रुदन—अभी हँसी
—दोनों ने मोह लिया
पलने की पैंगों के साथ-साथ लगा हिया—
चित्र लिखा देखा।

अभी-अभी उग आये किसलय से अंग
खिलने की चाह लिये पाटल सा रंग
हिल-डुल कर हाथ पैर
कहते, 'कुछ नहीं कही'
दिन उगते चहल-पहल जैसे हो नई-नई—
खींच गई रेखा।

यह खिलता कुसुम हमारा
प्राणों को प्यारा ।

लचकीली डाली, हिलते पत्ते बचकाने
रंगों का झुरमुट देता चिड़ियों के गाने
यह धूप हमारी भली—
बाँटती उजियारा ।

आँखों के तारे रूप-रंग से अँजते हैं
कानों के परदे स्वर-लहरी से बजते हैं
इस सौरभ ने घुल कर
साँसों को विस्तारा ।

*

डोल रही डाली पर
पास-पास फूल युगल
खिल खिल कर हँसे।

चितवन के डोरों सी
दोनों की गन्ध सखे
दोनों को कसे।

कुछ भी तो आपस में कहते हैं नहीं
जैसे वे पहले ही कर बैठे सही,
चुपके से लहरा कर
दोनों का रूप अरे
दोनों को डसे।

चिड़ियों की 'फर फर' ज्यों पंख लगी बहे
मन की जो बात, हिलक मन ही में रहे
बिना कही बात सखे,
सुन-सुन कर दोनों के
अन्तस् कसमसे।

घायल होने की मौसम में हमने पाली प्रीत
तुम्हीं बताओ अपना अनुभव हुई हार या जीत।

किसने लक्ष्य साध कर मारा तीर
हमने जगह-जगह सुलगाये
ये पलाश के फूल
साँस साँस से टकराती गाती फागुन के गीत।

लपटें उठतीं आसमान की ओर।
बड़वानल जलता
सागर का अन्तस् करता शोर।
वातचक्र में उलझ, उफनती
हुई ज्वार अविनीत।

*

कहाँ तपी तू कोयल इतना तीखा गाये री
उजड़ी डाल-डाल में फिर से आस जगाये री।

रूखों की नस-नस पर अपना स्वर परसाये री
संजीवन रस भरी सुई की नोक चुभाये री।

उझक-उझक जो तरु के तन से बाहर आये री
घुम-घुम कर पात-पात को तू दहकाये री।

पी तेरी स्वर-सुरा पवन ऐसा इतराये री
दुखियारी विरहन को निर्दय खूब सताये री।

तू अपने तप की विभूति सब पर भुरकाये री
टेसू बन में मेरे मन में आग लगाये री।

घूम घूम कर पवन कह रहा—
होली—होली—होली।

वनबाला के नव यौवन पर पागल
कुसुमाकर ने खोल हृदय के अर्गल
भर पिचकारी
गहरे रँग से रँग दी—
उर के अनियंत्रित विकास पर
वासन्तिक चोली।

स्मर का गुंजन सुमन-सुमन पर चंचल
गंध लहर लेता पराग का अंचल
किंशुक के क्षत
ले किसलय के तन पर
स्मिति में रख,
देती अपांग की मान भरी रोली।

आई खेल होरी
रंग की निचोरी।

गालो पर रक्त कमल
किसलय के ओठ
अंग-अंग टेसू से
भर लाई भोरी।

बाँहों की छाप गले
आँचल की ज्वार
कहती है—देखो तो
पिय की बरजोरी।

फागुन के रागों में
बौराई आँख
रह-रह कर चौंक रही
मधुवन की गोरी।

धिन धिन ता धिन तबला ढोलक
कहते फिरते होली है
होली है भई होली है।

गोरी के मुखड़े पर किसने
लगा दिया ऊषा का रंग
यह भी क्या मजाक है कोई
सुबह-सुबह ऐसा हुड़दंग,
यह तो अब तक सिर्फ एक ने
अपनी खिड़की खोली है।
होली है भई होली है।

कोयल तू कुछ चुप भी होगी
या बोले ही जायेगी
लगता है, तू पुष्पवती
लतिकाओं को भरमायेगी
देख जरा यह बहकी-बहकी
चाल हवा की भोली है।
होली है भई होली है।

और अचानक कौन कुँवर यह
रंग घोल कर लाया है
पिचकारी भर इसको-उसको
किरणों से नहलाया है
सबके चेहरों की सुघराई
एक रंग ने तोली है।
होली है भई होली है।

झुरमुट मत आँक अरी, सरवर के तीर।

रंगों के सपनो में सोया सुकुमार
सुमन एक
खोलेगा आँखें रतनार,
इतन सब रूप - रंग
धारेगा नीर।
झुरमुट मत आँक अरी, सरवर के तीर।

और तभी अनजानी दूरी से जाग
पवन यहाँ आ
अपना माँगेगा भाग
तट पर बस जायेगी
हलचल की पीर।
झुरमुट मत आँक अरी सरवर के तीर।

ग्रीष्म

मैं खड़ा तट पर किनारे नाव
इस नदी के पार मेरा गाँव।

गेह में बैठी प्रिया की याद
इधर जीवन समर का संवाद
धूप में तप रहा मेरा माथ
इस जगह पर नहीं तरु की छाँव।
इस नदी के पार मेरा गाँव।

खींचती है लहर अपनी ओर
इधर बढ़ता है बिगुल का शोर
बँधा मैं, खिंच रहा दोनों ओर
किस तरह हो मुक्ति का प्रस्ताव।
इस नदी के पार मेरा गाँव।

अगरु का निर्मोक धारे धुआँ
पवन नद के वक्ष पर चढ़
मौज लेता सुआ।

कुशल जादू किया
जिसमें कूटपन लुक गया,
वही मुख नेपथ्य का
आ मंच पर खुल गया—
भरम में पड़ गई सबकी नाक,
गमक की तब तक चलेगी धाक—
दृष्टि के विश्लेप ने
जब तक न इसको छुआ।

मुट्ठी भर भर उड़ा रही है धूल
हवा की मनमानी देखो।

इस जनपद की है यह रानी
फूलों से भरवाती पानी
चक्कर देकर इतराती है खूब
हवा की बनठन तो देखो।

अपनी-अपनी पड़ी सभी को
रो-रो ढाढ़स देते जी को
आँखें मलते बीते इतने वर्ष
निकाले कौन कनी देखो।

मुक्त व्योम वाले पंछी तुम मुझको भी उड़ना सिखला दो।
किरणों के जगने से पहले
पंख खोल कर तुम उड़ जाते
वसुधा के विस्तृत अंचल से
मस्ती के कुछ कण चुन लाते
अपने ही बल पर मुझको भी
जीवन कण चुनना सिखला दो।

तृण तरु लता कुंज वन उपवन
हरे भरे खेतों पर उड़ते
गिरि, जल या दुर्गम मरु पथ हो
गति अबाध, तुम कहीं न मुड़ते
सौरभ ज्यों मारुत तरंग पर
मुझको भी चलना सिखला दो।

जिससे ध्वनित दिशाएँ, वह
संगीत प्रकृति का तुम सुन पाते
हृदय-गगन से उन्हीं स्वरों की
प्रतिध्वनि मिस तुम गीत सुनाते
पाकर परस गा सकूँ मैं भी
उस स्वर को सुनना सिखला दो। •

आशा के पाँवड़े बिछाये
मैंने पथ पर मीत के
पानी के मोती छितराये
भोले दृग अविनीत के।

पीड़ा की वर्ती से जलता अभिलाषा का दीप
मेरा सूनापन समाधि में जपता मंत्र प्रतीप
घायल प्राणों पर मँड़राते
सपनों के स्वर प्रीत के।

तृष्णा का आकाश, निकाले रवि की जिह्वा लोल
दो घड़ियों की फीकी साँसें चाट रहा अनमोल
परती छाती पर अँकुरे हैं
बोये बीज अतीत के।

सुधियों के शिखरों से झरते झरनों के उस पार
राग भरे चलचित्रों का पलकों पर उठता ज्वार
झागों में बन कर उड़ जाते
उजले रंग अतीत के।

धूप का तपना

जेठ में यों धूप का तपना।

क्या पता
किसकी लगी है पीर
पोखरों में चुक गया है नीर
रोशनी में आँसुओं के दाग का कँपना।
जेठ में यों धूप का तपना।

हवा
करने पर तुली है याग
अँजुरियों भर होमती है आग
नदी पर्वत रूख का आकाश को तकना।
जेठ में यों धूप का तपना।

*

ले लो मेरा प्यार सखे तुम
जीवन संचित प्यार।

कितने युग की साध
हृदय के रस में पगी पड़ी थी
मेरे कूलों के बन्धन से
कितनी बार अड़ी थी
पागलपन में फफन
मचाती कितना हाहाकार।
सखे तुम ले लो मेरा प्यार।

अपनी बाहों के बन्धन का
देकर मधुर सहारा

अपनी धरती को सींचो
जीवन का नहीं किन
दो भुज, दो तट का आलिंगन
रच देगा शृंगार।
सखे तुम ले लो मेरा प्यार।

वर्षा

विभुता भरे जगत में प्यारे
तुम कैसे बन गये भिखारी !

किसने तुम में प्यास जगाकर
प्राणों को रह-रह अकुलाया
किरणों से सिकता चमका कर
माया-जल किसने दिखलाया
आकर्षण के मंत्रतेज से
तुम कैसे खिंच गये भिखारी !

अधरों में कुछ अस्फुट गुंजन
नयन अपार शून्य में खोये
करुण बादलों से जीवन में
कौंध भरी बिजलियाँ सँजोये
दिशाहीन गति से, दृढ़ पग तुम
किस पथ पर चल रहे भिखारी !

खिड़की से लगी हुई आँख
पिंजरे में बन्दी है पाँख।

तने हुए परदे पर
बन-बनकर मिटते हैं चित्र,
कितना भर दिया,
—कहीं इन्धन का शेष नहीं मित्र,
जल-जल कर ऋतुएँ
सब बनती हैं राख।

किरणों के धागे गह
चढ़ते हैं क्षण
बनकर भाप
पता नहीं, कैसे यह
सूना सा घिरता चुपचाप
उजले या काले
सब बरखा के पाख!

बिजली की लुकाछिपी बदली का देश
आँखों में करक रहा रिमझिम परिवेश ।

इतराई हरियाली
और-और उझके
कौन कहाँ बोल रहा
शब्द-वेध पिउ के
कलियों में—फूलों में
रस का उन्मेष ।

द्वार लगी तनहाई
पथ को धुँधलाए
इस पगले पावस को
कैसे क्या गाये
कोलाहल खींच रहा
चुप्पी के केश ।



बन्धु रुद्र नाचो ।

डिम-डिम स्वर कण-कण में
आन्दोलन हर क्षण में
विस्फोटक भूधर के
कम्पन सब आँचो ।

नीचे ललकार मुखर
बन्धमुक्त रत्नाकर
ऊपर घन प्रलयंकर
विद्युत् गति जाँचो ।

तमसासव पी कृतघ्न
मनाते उलूक लग्न
ज्वालोड़ित रोम कील
उनके सिर टाँचो ।

विगलित कनकाभ देह
वर्षा के वज्र मेह
अनियंत्रित नवोत्साह
ताण्डव रँग राचो ।

इस बादल का जीवन मेरी धरती का।

छितराये बीजों का अन्तस् खुलने को
श्रम की बूँदें हरियाली में घुलने को
पावस की आरंभिक पावन वेला में
इस बादल का जीवन मेरी धरती का।

विष की गैसों का मुख काला करने को
साँसों के बहने की बाधा हरने को
उमसाये क्षण की बढ़ती अवहेला में
इस बादल का जीवन मेरी धरती का।

आओ री बूँदों की परियो,
मेघों से तुम आओ ।

प्रखर ताप से जलता जन-जन
व्याकुलता से थिर तन, चल मन,
संतप्तों में शीतलता का
स्वाद जगाने आओ ।

असह धूप वाले श्रम-कण में
बीजवती धरती के मन में
कृषकों के उत्सुक नयनों में
आशा लहर उठाओ ।

'पी' की जलन श्याम को पाये
मोर वनों में नाचें-गायें
रिमझिम-रुमझुम रिमझिम-रुमझुम
नूपुर सबद सुनाओ ।

झुके झुके आये
मेरे मन भाये !
रुका नहीं नेह !
स्वागत है आये तो
कजरारे मेह
रुठे थे,
ताप कहो
कहाँ छोड़ आये !

हरी भरी चाह,
बिजली के झिटके
औ' रिमझिम के माह
ऐसे दिन
डालों पर
झूले बँधवाये !

आँख में काजल गभुरुए केश
आगये तुम साँवरे किस देश !

गले में जल मोतियों का हार
नृत्य करती मोर जैसी चाल
देह में यह उमडती सिहरन
बनाया कौन सा यह वेष !

बाँह कैसे दूँ लताओं की
जागते हैं पुष्प के सपने
आह, मन के मर्म सी बिजली
दिखाती प्यास वाले देश !

सिन्धु क्यों छोड़ा बताओ तो
आँच मेरी सूर्य में ढलकर
किन तहों तक उतर कर जल में
जगाये भाप के आवेश !

गाछ का तन सनसनाता है
तुम बवण्डर में घिरे पगले
विश्व संवादिक न जाने
चाहता है कौन सा सन्देश !

आज किसको सौंप दूँ मैं
प्रार्थना के ये चरन।

कौन सा यह ताप
जिसमें पिघलता जाता हृदय
छन्द में ढलकर बदलता रूप
बन जाता विनय
कौन थामेगा
सघन आकाश के अनुभूति छन।

अंकुरित यह देह किसकी
स्नेह और उजास की
और इसकी छाँह लेकर
फेन रूप हुलास की
सिन्धु के विस्तार पर
खिलते कमल नीले बरन।

*

शरद

प्रेम के ये वयन
लो फिरा, सब चतुरता के चयन !

यह रिझाने की कला है व्यर्थ
हृदय को अज्ञात इसका अर्थ
कहाँ शीतल जल !
तृषा के नयन।

गगन भेदी यान तेरे
धरा के प्रतिकूल
अहम् का इन्धन जुटा
अस्तित्व का ले मूल
व्यंग बनकर उड़ रहे हैं
दूसरे ही अयन।

उस कलूटे सजल घन को
चंचला से अलग कर दो।

कटे सँवरे श्वेत झीने
मेघ का दिनमान आया
हवा पर आसीन
इसके ठसक का मुख चमचमाया
इस बने की टहल करने
शिशिरकण को सुअवसर दो।

लहलहाने उगे, मिट्टी के
सभी पौधे कटाओ,
कागदों के फूल को
मतदान दे विजयी बनाओ
बिना पानी टिके जो
उसके विरोधी दूर कर दो।

कुंकुम की थाली ले
आना है भोर हमें
पूरब की राह।

जितने भी फूल खिले
जितने भी रंग घुले
चिड़ियों की चहक
हमें सुनने की चाह।

बाड़व से डरना क्या
लहरों से करना क्या
सागर का अतल
हमें लेनी है थाह।

स्वेदों का पी पानी
मुस्कानें दीं धानी
नये-नये खेत
हमें करनी है छाँह।

'कल तेरी बारी
पनघट आने में मैं पीछे रह हारी।

मुझको रख ऋजु पथ पर
गलियों से तुम चलकर
पहुँचे मुझसे पहले
छल से गिरधारी।'

'मैंने तो कहा प्रिये
आओ गल बाँह दिये
संग चलें,
हठ से तुम रही किन्तु न्यारी।'

'चुप बस, मैं अलग भली,
आऊँगी स्वयं चली,
कल सँग रह!
बरजोरी सही सब तुम्हारी।'

*

आज न छोड़ूंगी
बाँधा है पलकों में तुमको
आज शपथ है उजले क्षण में
राधा की मुझको।

क्यों अधरों पर मुरली धर कर
स्वर भर खींच लिया
जल में छिपकर फँसी लाज को
क्यों निर्वसन किया
गोरस तस्कर,
आज परेखो अपने कौशल को।

विकसित तरु से कुसुम लता का
मिलन-मुखर संगीत
अहा, मलय के झोंकों का
संचार बहुत अविनीत
आज श्यामघन से बिजली की
मुक्ति नहीं तुमको।

चिलकती है झील
झेल कर प्रतिबिम्ब सारे
निथरता जल नील

चोंच भर-भर
चिड़ी पीती नीर
स्वाद बन कर वीचियाँ आ
चूमती हैं तीर
दिशाएँ सब स्तब्ध
जैसे मंत्र ने दीं कील

धरा से उठ कर
गगन की ओर
स्वाद की आवाज़ बढ़ती
मापने को छोर
उड़ी एक पतंग
जैसे पा रही हो ढील। *

सोना उगले धरती मेरी हाथ किसानों के।

दिया पसीना
आलस भागा
मिट्टी जागी रे
बीज बिखेरे
झमझम करती बरखा आई रे।

अंकुर आये
भर-भर लाये
सिट्टा - बाली रे
हवा छेड़ती तार
और हरियाली गाये रे।

खलिहानों में
सजी आरती
ऋधियाँ नाचे रे
पियवा बैठे चिलम चढ़ावे
धनि मुस्काये रे।

री वे क्या आये !

हाथ जब मिलाया था
दोनों ने गाया था—
साँसों की सीमा तक
साथ ही रहेंगे,
यह आत्मा की आग बीच
स्वयं को सुनाया था
तेरे वे साथी क्या आये !

जिस दिन तू आई थी
सपने भर लाई थी,
जिसके सुख के प्रकाश
खिलने तू लगी
और बदले में तूने दी
घर को अरुणाई थी
तेरे वे प्यारे क्या आये !

आँचल को गीला कर
रोजी को गये शहर,
ऐसा क्या साधन
जो गेह को छुड़ाता है,
यादों में जिसकी
सब उलझ गये घड़ी-पहर
तेरे वे अपने क्या आये !

चलो भई मृग तृष्णा के देश।
जहाँ तृप्ति के नद लहराते
पिओ, न छोड़ो लेश।

जीवन के क्षण बहुत मिले हैं—
तुम से कब ये फूल खिले हैं
दौड़-दौड़ इनको झुलसा दो
फिर निरखो अनिमेष।
चलो भई मृग तृष्णा के देश।

दुर्बलता को नियति बनाकर
चारण बन उसके गुण गाकर
मधु की ऋतु में रहो ठूँठ ज्यों
स्पन्दनहीन विशेष।
चलो भई मृग तृष्णा के देश।

मानस की लहरें उठने दो
फिर उनके दम को घुटने दो
हो जायें सब रवि शशि प्रशमित
व्यथा रहे अवशेष।
चलो भई मृगतृष्णा के देश।

ऊसर में क्या बीज बो दिया तुमने साथी
मैं अब तक तो सीझा ही बस खुल न सका।
कारा में जंजीरित जब से हुआ तभी से
डगमग कर रह गया, कभी हिल-डुल न सका।

अन्धकार का नीड़ हमारा
इस पर ही विश्वास मुझे,
नभ की मेघहीन बूँदों की
रातों का परिहास मुझे
मिला विवर का घुटता कोना
दिवा किरण से धुल न सका।

कितने बादल गरजे बरसे
सन्-सन-सन्-सन् वायु बही
बिजली ने झिटके दे-देकर
कितनी जीवन कथा कही
पर मेरी मिट्टी का अन्तस्
रसबस होकर घुल न सका।

प्राण के घायल क्षतों पर
यह सलोनी सुधि तुम्हारी।

रूप पाया जब विहग ने
प्रेम के जब पंख आये
और हमने ललक
छूँछे बादलों के गीत गाये
स्वर सहारे भटकती है
रागिनी यह व्यथा वारी।

सिन्धु की व्याकुल कुलाँचें
टूटतीं सैकत किनारे
क्षण चमक की चाह में
फिर-फिर बनातीं झाग खारे
कुहासों में घिर गये हैं
टँके तारे निशाचारी।

दूसरे देश सुना गुंजन
यहाँ अब क्या है,
जा फिर जा।

मधुप, यह है पतझर का वन
डाल पर खिलते नहीं सुमन
न तो वह धूम
नहीं उल्लास
स्वरों का आकर्षण
व्यथा की घड़ियों में चुपचाप
कट रहे दिन
कुपरिचित घिसे-पिटे ये दिन।

मधुप अब गुनन-धुनन मत कर
बहुत कटु लगते तेरे स्वर
छेदने पर क्यों तुले अधीर
गाछ का ठूँठ शरीर
हवा पर आँके थे सुकुमार
गन्ध के छिन
कहाँ अब वे परिमल के दिन!

पतझर की डाली पर उतरी शाम
अँधेरा खिल-खिल हँसता है।

थकी धूप ने डाल दिये हथियार
गयी सुबह की यादें बस दो-चार
सन्नाटा उकेरता तिरछी नींद
स्वप्न सिसकी बन बजता है।

छिपी, न दिखती कहाँ सुलगती आग
धुआँ आँकता ही जाता आकाश
लहरें चिल्लातीं सागर के तीर
कान का परदा फटता है। *

थकी हारी शाम
लुढ़क कर सो गई
जैसे एक पूर्ण विराम।

चोट खाई हुई कोई कथा
लहू की बस रही इतनी बात
और चारों ओर
वातावरण केवल श्याम।

एक तारा ओढ़ लेता मौन
ओस से उतरा यहाँ यह कौन
लिख रहा है
फूल पत्तों पर किसी का नाम।



मूर्ति तुम्हें लौटा न सका ।

तुमने जो सौपी थी उस दिन
प्रतिमा एक सजीव
अभी-अभी अवतरी देह ज्यों
धड़कन लिये अतीव ;

जीवन के दिन भूखे मेरे
भूखी क्षण - सन्तान
उन्हें पालता रहा
मूर्ति के टुकड़ों का दे दान

खण्डित बदसूरत कर डाली
थाती को लौटा न सका ।

ऋतुसन्धि

क्या करूँ संकल्प मेरे टूटते हर बार
चेतना को खींच लेता है तुम्हारा प्यार।

मोतियों को थपथपा,
कर रात आँखें बन्द
नींद ही में गुनगुनाता
'अब नहीं' का छन्द
पर प्रभाती छींट देती रंग की गुंजार
चेतना को खींच लेता है तुम्हारा प्यार।

बादलों की मुट्ठियों में
बिजलियों को भींच
इन्द्रधनु को ढाँप देता
अन्धकार उलीच
किन्तु रिमझिम छेड़ देती फूट कर जलधार
चेतना को खींच लेता है तुम्हारा प्यार।

कितने पागल क्षण लौट गये
कब उनको पाया बाँध,
इतना विष पीकर भी जीती
यह मेरी भोली साध।

मन की कलिका पर किरण पड़ी
पर कब मकरन्द भरा
कब हुआ मुखर मेरा कोना
कलरव से हरा भरा
दीनता मूषिका कुतर रही
जीवन के पृष्ठ अबाध।

हर क्षण तम का गहरा बिल है
। किरणें हो जाती लीन
धुँधली आँखों की राहों पर
घिर जाती घटा नवीन
तब बिजली उकसा देती है
मानस का नीर अगाध।

कोई स्वर-काया खींच रही
कुछ ऐसी कहकर बात
मैं तानों पर चढ़ता गिरता
बढ़ता जाता दिन रात
गति—बाधा की लय—तालों पर
चलता संगीत अबाध।

*

खोलो अब द्वार।

कमरे में मौन की घुटन
बढ़ती ही जाती है तपन
ऊमस से अकुला कर
खिंचते हैं साँसों के तार।
खोलो अब द्वार।

प्रश्नों की लगी है कतार
उत्तर हो गये निराकार
अपने से उकता कर
भीतर का व्यक्ति रहा पुकार।
खोलो अब द्वार।

रात के पिछले पहर को दे विदाई
हम जगायेंगे चहकती भोर।

एक सपना हो गया साकार—
विविध रंग, परन्तु एकाकार,
सूर्य को यों हाथ में ले
दिशाओं में छींट देंगे हम प्रभाती शोर।

धूप का आरोह घर-घर में
हँसी का कलरोल हर स्वर में
चेतना यों खींच कर संकल्प वाली
आँज देंगे दृष्टि का हर कोर। ●

यहाँ वहाँ यह कैसी सुगबुग
कैसा यह परिवेश !

हवा घूम फैलाती घुमती हुई कथा
किसने समझी कोयल की यह मर्मव्यथा
झरते पत्तों की शाखों में
यह कैसा आवेश !

होठों पर उगने को जैसे प्रथम किरन
अभी अँधेरे में अलसाये हुए चरन
खुलने को बेचैन
दिशा के हरकत भरे निमेष !

झर रहे पत्ते पुराने
नये कुछ-कुछ लगे आने।

पेड़ पौधों में जगा उत्साह रचने का गजब है
शीत-उष्मा का मिलन यह पवन में होता अजब है
जिस किसी का देख लो मुख
लगे सब में रंग आने।

डाह से जल रहे ठूँठे देख तेज पलाश वन का
चिड़ी तक लेती न आश्रय यों हुआ है रूप उनका
ऐंठ बीते हुए कल को
लगे कुछ ज्यादा दिखाने।

आगमन के मंत्र जैसी गूँज है वातावरण में
चाहते हैं, मधुकरों को लें सभी अपनी शरण में,
गीत की ऋतु-गोठ में
कोयल प्रथम आई सुनाने।

मातृभूमि के अमर दीप में
अपना-अपना स्नेह मिलाओ।

प्रकृति-पुरुष की प्रेम कथाएँ
जीवन की सब हँसी-व्यथाएँ
दीपक के शीतल प्रकाश में
गूँथ-गूँथ गीतों में गाओ।

लगे न कुछ भी कहीं पराया
लहर-लहर ज्यों जल की माया
तम के भाग-विभाग हरे
वह विमल ज्योति आँखों में पाओ।

श्रम की रुचि सब को ललचाये
स्वाद हमें नित तोष दिलाये
मंगलमय भूमा के जग में
घूम-घूम आनन्द मनाओ।

नमन तुम्हें जागरण देवि शत नमन तुम्हें ।

तन-मन हों स्वाधीन हमारे
विचरें समुद प्रकाश तुम्हारे
धुल जाये सब कलमष, वर दो
अति नियमों की मुक्ति हमें ।

सज्जन हों प्रतिवेश हमारे
रहें स्नेह के अभय सहारे
घर-घर को आलोक विभव दो
सम वितरण की आन तुम्हें ।

हवा विचरती रहे गीत-स्वर
पंखों से अंकित हो अम्बर
चेतनता की स्फूर्ति नवीने,
सानुकूल हो प्रात हमें ।

अरुण कलश में ज्योति सलिल भर
वह आती
बीजवती युग धरती पर रस बरसाती ।

पंखों में कुछ कम्प जगा प्यारा-प्यारा
उड़ने के नभ में फैलाकर उजियारा
आवाहन संकेत गन्ध के
रख जाती ।

अलस चेतना को जागृति के गीत जगा
आँखों में गाहकता का रस-रंग लगा
नव दिगन्त के द्वार खोलकर
मुस्काती ।
वह आती ।

जाहिर है, कविता भूगोल विद्या नहीं है। इसलिये कविता में भौगोलिक विवरण खोजना कविता की प्रकृति के प्रति अपरिचय प्रकट करना है। ऋतु-गंध से प्रेरित शंकर माहेश्वरी की इन कविताओं में ऋतु-विशेष का प्रत्यक्ष रूप और भूगोल का स्थूल विवरण यदि नहीं है तो इनकी प्रामाणिकता का, सच्ची कविता होने का एक बड़ा प्रमाण है। ऋतु-गंध को महसूस करने की संवेदना मौसम विज्ञान के यन्त्रों से मौसम की रूप-गंध का आस्वाद नहीं लेती। संवेदना का व्यापार बड़ा सहज होता है। संवेदना की उसी सहज प्रतीति को शंकर माहेश्वरी अपनी इन कविताओं में व्यक्त करते हैं। इन कविताओं में व्यक्त ऋतु-लीला की विविध मुद्रायें छोटे प्रयोजन में कैद मनुष्य की मुक्ति की हाँक लगाती हैं। महानगर की यांत्रिकता और कोलाहल के बीच दीर्घ काल से रहने के बावजूद कवि की संवेदना प्रकृति-परिसर से आत्मीय रूप में संपृक्त है। ऋतु-विशेष की हर हाँक पर कवि की संवेदना सुमुख और सक्रिय हो उठती है। जिस ऋतु का प्रभाव कवि पर जितना गहरा है उसकी उतनी ही लीला-मुद्रायें कवि ने विभिन्न कविताओं में व्यक्त की हैं। इस प्रकार एक ऋतु का प्रभाव-प्रेरणा अनेक कविताओं की रचना का स्रोत है। प्रभाव सूक्ष्म है, इसलिये ऋतु-विशेष के स्थूल लक्षण इन कविताओं में नहीं दिखाई पड़ते। भूगोल और मौसम विज्ञान की जानकारी देना कविता का उद्देश्य होता भी नहीं। शायद यह एक बड़ा कारण है कि हर सरणी के यात्री की कविता में सहज रुचि होती है।

कविता से बड़ी उम्मीद करने वालों की शिकायत है कि आज की कविता जीवन से कट रही है। इस शिकायत को काटती है शंकर माहेश्वरी की ये कवितायें। जीवन की भरपूर गंध से स्फूर्त शंकर माहेश्वरी की ये कविताएँ आश्वस्त करती हैं कि कविता जीवित है। और जीवन का वास्तविक आस्वाद लेने के लिए, अपनी जड़ता को आलोक-मुखर करने के लिए कविता से जुड़ना जरूरी है।